प्रथम अध्याय

भूमिका

1.1 भूमिका :

मानव का सम्पूर्ण जीवन समझौतों और समायोजनों का मिलन बिन्दू होता है अर्थात् सम्पूर्ण मानव जीवन एक प्रकार का समझौता है । मानवीय अवधारणाएं जो कि मानवीय संवेदनाओं से किसी भी स्तर पर कम नहीं है, हमेशा से द्वन्द्व के इर्द-गिर्द ही घुमती रहती हैं, फिर वह द्वन्द्व अच्छाई-बुराई का हो या ठण्डे-गर्म का । हिंसा और अहिंसा भी इसका कोई अपवाद नहीं है । शुद्ध हिंसा की तरह शुद्ध अहिंसा भी मानवीय अस्तित्व से बिल्कुल परे की बात है । दोनों एक-दूसरे के पूरक की तरह ही अस्तित्ववान हो सकते हैं, विरोधी की तरह नहीं इसीलिए अहिंसा के पूर्ण स्वरूप के अध्ययन के लिए हिंसा का भी पूर्ण रूप से अध्ययन नितान्त आवश्यक है ।

साधारण शब्दों में "अहिंसा अनिवार्य तथा व्यापक रूप से हिंसा के सभी रूपों का सभी स्तरों पर पूर्ण रूप से निषेध है"[1] अहिंसा के स्वरूप को भलि-भांति समझने के लिए हिंसा को समझना जरूरी है । हिंसा का सामान्य अर्थ है - किसी को कष्ट पहुँचाना । यह मानव जीवन में सदीयों से चली आ रही एक जटील समस्या है और पूरा विश्व इसमें उलझा हुआ है । हिंसा न केवल मनुष्यों में अपितु पशुओं में भी पाई जाती है, मानव में ईर्ष्या, निंदा, क्रोध, भय आदि विकार विद्यमान हैं, जहाँ ईर्ष्या है, वहाँ क्रोध है और जहाँ क्रोध है, वहां हिंसा अवश्य होगी । हिंसा करने से अस्थाई सुख का अनुभव होता है, इसलिए मनुष्य बार-बार हिंसा करता है । हिंसा का विनाशकारी रूप

व्यक्ति, समाज, राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय सभी स्तरों पर देखने को मिलता है। इतिहास गवाह है कि हिंसा के कारण बड़े बड़े महायुद्धों का जन्म हुआ है । हिंसा से वैमनस्य फैलता है और जान-माल की भारी क्षति होती है, जिसकी पूर्ति करना असम्भव होता है। समाज में शान्ति लाने के लिए इसकी उत्पत्ति एवं इसके कारणों को खोजना आवश्यक हो जाता है। प्रत्येक मनुष्य चाहता है कि उसके अंदर चिन्ता, घृणा, क्रोध, भय आदि विकार न हो, वह शान्ति से जीना चाहता है, यह संसार इतना सुंदर, समृद्ध तथा भरपूर है लेकिन हमारी सही सोच न होने के कारण हमने इसे हिंसक बना दिया है । यदि आपके जीवन में पूर्ण शान्ति विराजमान है तो फिर आपके लिए कोई समस्या नहीं रहेगी, भले ही आपको कारावास में डाल दिया जाए ।

अहिंसा एक महाव्रत की तरह है जो तलवार की धार पर चलने से भी कठीन है । अहिंसा के पालन के लिए घोर तपश्चर्या की आवश्यकता है । तपश्चर्या का अर्थ है त्याग और त्याग अहिंसा का प्राण है जिसके बगैर मनुष्य पशु के समान है । दूसरे के लिए प्राणार्पण करना प्रेम की पराकाष्ठा है । इसी का शास्त्रीय नाम अहिंसा है, दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि अहिंसा ही सेवा है । संसार में जीवन और मृत्यु के बीच संघर्ष युद्ध होता रहता है परन्तु दोनों का परिणाम मृत्यु नहीं जीवन है । अहिंसा एक परम पुरुषार्थ है। अहिंसा शुष्क, नीरस एवं जड़ पदार्थ नहीं वह आत्मा का विशेष गुण है। मानव संहार कोई मानव धर्म नहीं है । मनुष्य अपने भाई को मारकर नहीं अपितु जरूरत है तो उसके हाथ से मर जाने को तैयार रहकर ही स्वतन्तत्रता से जीवित रह सकता है । हत्या या अन्य प्रकार की हिंसा, फिर वह चाहे किसी कारण से की गई हो, मानव जाति के विरुद्ध एक असभ्य

अपराध है, अहिंसा नम्रता की चरम सीमा है । अहिंसा की वास्तविक साधना मनुष्य के व्यक्तिगत प्रयत्न पर निर्भर है । अहिंसा की शक्ति अपरिमेय है । पूर्ण अहिंसक मनुष्य गुफा में बैठकर भी सम्पूर्ण जगत् को हिला सकता है । परन्तु इस विचार के लिए पूर्ण एकाग्रता तथा पूर्ण शुद्धि अवश्य होनी चाहिए । अहिंसा केवल बुद्धि का विषय नहीं है बल्कि अहिंसा तो श्रद्धा तथा भक्ति का विषय है । यदि मनुष्य को अपनी आत्मा प्रार्थना तथा ईश्वर पर विश्वास नहीं तो अहिंसा उसके काम आने वाली चीज नहीं है । अहिंसा ही मनुष्य की सभी समस्याओं का हल कर सकती है । अहिंसा से ही प्रेम उत्पन्न होता है जिसके कारण एक मनुष्य दूसरे को समझता है जिसके परिणामस्वरूप मनुष्य सभी परिस्थितियों में घृणा व शंकाओं पर मनुष्य विजय पाने में सफल रहता है ।

आपकी टीम विजयी रहती है तो आपके शरीर पर लगी चोट भी पीड़ा नहीं देती, उसे आप भूल जाते है। । लेकिन आप को कोई कड़वी बात कह दे तो मन दु:खी हो उठता है, यद्यपि इस कड़वी बात से आपके शरीर पर कोई चोट नहीं लगती । इसका कारण यह है कि जीवन में तन व मन दोनों का समान महत्त्व है । इस आधार पर किसी को शारीरिक या मानसिक रूप से किसी को चोट पहुंचाना ही हिंसा है। ठीक विपरित आपके किसी कार्य या आचरण से किसी को शारीरिक या मानसिक चोट न पहुंचे, अहिंसा हिंसा एक ऐसा व्यापक वर्ग है जिसकी अभिव्यक्ति व्यक्तिगत व संस्थागत दोनों स्तरों पर होती है । बुरे विचार, बदले की भावना, ईर्ष्या-कटुता, निष्ठुरता तथा यहां तक कि अनावश्यक पदार्थों को अनावश्यक रूप से एकत्रित करना भी व्यक्तिगत हिंसा की श्रेणी में आता है । आर्थिक शोषण तथा अत्याचार भी हिंसा

के विविध रूप है । अव्याधिक नक्ल व प्रतिस्पर्दा भी हिंसा के कारक हो सकते हैं।

अहिंसा मानसिक पवित्रता का नाम है । इसके व्यापक क्षेत्र में सत्य-ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह आदि सभी गुण समा जाते हैं । अहिंसा केवल एक व्रत नहीं है बल्कि अहिंसा एक विचार है, एक सामायिक चिन्तन है । अहिंसा अन्तर्चेतना है, मनोभावों में क्रान्ति का बीजारोपण है, यम-नियम को चरितार्थ किए जाने वाला एक सम्पूर्ण जीवनदर्शन है । अहिंसा धर्म है, पुरुषार्थ है, जिसका उद्देश्य चेतना का जागरण है । अहिंसा संसार के सभी कर्मों का मूल है । इसलिए अहिंसा को परमधर्म कहा गया है । मानवता की परिभाषा यदि एक शब्द में करनी हो तो अहिंसा के अतिरिक्त दूसरा कोई शब्द नहीं है जो उसे महिमा मण्डित कर सके । अहिंसा का अर्थ दुर्बलता नहीं वीरता है, अहिंसा मित्रता की मंगलध्वनी है, वह जोड़ती है । अहिंसा सामाजिक शिष्टाचार का अलंकरण है, वह निष्पाप पावन है, शान्तिवन है, जहां बैठकर निराकुलता तप करती है । अहिंसा का क्षेत्र इतना सकुंचित नहीं है, जितना समझा जाता है । अहिंसा का आचरण भीतर और बाहर दोनों होता है । अन्तरंग में चित का स्थिर रहना अहिंसा है । क्रोध मान, माया, लोभ से रहीत पवित्र विचार और संकल्प ही अहिंसा है । अंतरंग में ऐसी आंशिक साम्यता लाए बिना अहिंसा की कल्पना नहीं की जा सकती, अहिंसात्मक चिन्तन विश्व के लिए एक मौलिक देन है जिससे न केवल मनुष्यों को बल्कि मनुष्येतर सभी शान्ति पिपासु जीवधारियों को शान्ति प्राप्त हो सकती है । प्राचीन काल से ही ऋषि-मुनियों ने अहिंसा का सन्देश दिया । इस अभेद दृष्टि से मन में दया, करुणा आदि गुणों का अविर्भाव होना स्वाभाविक है तथा जहां दया व करुणा होंगे वहां,

संघर्ष, विरोध तथा घृणा का अभाव होगा जो अहिंसा हेतु अति आवश्यक है ।

प्राचीन समय में मनुष्य आत्मा की अमरता, कर्मवाद तथा पुनर्जन्म सिद्धान्तों का अनुसरण करते हुए अपने उचित व सुनहरे भविष्य की कामना को ध्यान में रखकर हिंसा से अहिंसा की ओर अग्रसर रहने की चेष्टा करता था । इस प्रकार भारतीय संस्कृति और अहिंसा का संबंध अटूट रहा है । इस संस्कृति में अहिंसा केवल पैदा ही नहीं अपितु विकास को भी प्राप्त किया । प्राचीन काल से ही भारतीय संस्कृति में अहिंसा को सर्वोपरि स्थान दिया गया है। वैदिक काल से ही महात्माओं का मानना रहा है कि सम्पूर्ण जगत में सभी प्राणियों में चैतन्य या आत्मा विद्यमान रहती है । अत: सभी प्राणियों को आपस में प्रेम के साथ व परस्पर दया भाव रखते हुए निवास करना चाहिए, हिंसा से अहिंसा की ओर अग्रसर होने की दिशा में यह निश्चय ही आध्यात्मिक कोटी का विचार है । प्राचीन काल में मांस भक्षण निषेध का विचार भी इसी आध्यात्मिक विचार का परिणाम दिखाई पड़ता है । इस प्रकार प्राचीन भारतीय संस्कृति में निहीत आध्यात्मिक दृष्टि को अहिंसा के एक प्रमुख तत्वमीमांसीय आधार के रूप में देखा जा सकता है । यहाँ पर एक तार्किक प्रश्न उत्पन्न होना स्वाभाविक है कि मनुष्य सभी प्राणियों के प्रति अहिंसक क्यों रहें । इस प्रश्न का सैद्धान्तिक उत्तर यह है कि क्योंकि मनुष्य तथा अन्य प्राणियों में अभिन्नता है जोकि चैतन्य या आत्मा के रूप में अभिव्यक्त हुई है । अत: मनुष्य का यह नैतिक दायित्व बनता है कि वह इस तात्विक अभिन्नता को समझते हुए सभी प्राणियों के साथ अहिंसक व्यवहार करे, कम से कम उस स्थिति तक जब तक कि प्रतिकूल व्यवहार करने का कोई ऐसा प्रबल कारण जैसे

'जीवन रक्षा' आदि उपस्थित न हो । आत्मा की अमरता के साथ-साथ कर्मवाद तथा पुनर्जन्म का सिद्धान्त भी अहिंसा के समर्थक के रूप में हमेशा विद्यमान रहे हैं । 'कर्मवाद' के अनुसार मनुष्य जैसा भी कर्म अच्छा या बुरा करता है, भविष्य में उसके अनुसार ही उसे अच्छे या बुरे फल की प्राप्ति होती है । इसी प्रकार यदि हम 'पुजर्नन्म' के सिद्धान्त की बात करें तो मनुष्य यदि वर्तमान जन्म में दूसरे प्राणियों का बुरा करता है या कष्ट पहुंचाता है तो उसको अगला जन्म अपने पूर्व जन्म के कर्त्यों के आधार पर ही प्राप्त होता है ।

अहिंसा एक परमधर्म है । सम्पूर्ण व्यक्तित्व की अनिवार्य स्थिति, मानवीय दृष्टिकोण एवं दायित्व ही नहीं वरन अहिंसा धर्म भी है । अहिंसा के अन्तर्गत प्रतिशोध, क्रूरता, संचय प्रवृत्ति, असत्य, ईर्ष्या, क्रोध, शारीरिक बल प्रयोग, किसी प्रकार का शोषण सब निषिद्ध होता है । अहिंसा के आधार स्वरूप त्याग, बलिदान, प्रेम सत्य, दया, सहिष्णुता, आन्तरिक शक्ति का निर्माण, कर्तव्यपरायणता तथा पाप व पापी के भेद का ज्ञान आदि अनिवार्य स्थितियाँ होती हैं । अत: अहिंसा केवल हिंसा से मुक्त होना ही नहीं अपितु दुष्पप्रवृत्ति एवं विकारों से मुक्ति ही अहिंसा है । अहिंसा सर्वोच्च स्तर पर नि:स्वार्थ मूल्यों की प्रमाणिकता है। यह सत्य है कि जब व्यक्ति किसी जीव तथा व्यक्ति से भयभीत न हो, अपने अस्तित्व को सुरक्षित माने, तभी अहिंसा की स्थापना होती है। अहिंसा एक जीवित व सशक्त मूल्य है । हिंसा अहिंसा से पूर्णत: स्वतन्त्रत और अलग चीज नहीं है, वह अहिंसा का ही एक विकृत रूप है । मानवीय सम्बन्धों की सभी समस्याओं का एकमात्र हल अहिंसा है, अहिंसा हिंसा से अधिक शक्तिशाली है । अहिंसा एक-दूसरे के प्रति प्रेम और आदर को जन्म देती है तथा सभी मनुष्यों को समान समझने

की प्रेरणा देती है। अहिंसा एक विरोधात्मक धारणा न होकर वस्तुत: एक विधेयात्मक शक्ति है । अहिंसा बुराई को अच्छाई से जीतने का सिद्धान्त है, जिसमें कोई बदले की भावना नहीं है कोई षडयन्त्र नहीं है, न ही कोई प्रतिकार साथ है और न ही संगठित युद्ध व न ही गुप्त हत्या है। अहिंसा सर्वोच्च नैतिक एवं आध्यात्मिक शक्ति का प्रतीक है। अहिंसा में असंभव को संभव बना देने की अपार शक्ति विद्यमान होती है । हिंसा तो अहिंसा का एक विकृत तथा स्थानच्युत रूप मात्र है ।

1.2 भारतीय दर्शन में अहिंसा की अवधारणा :

भारतीय दर्शन से यहाँ अभिप्राय-सम्पूर्ण भारतीय दर्शन नास्तिक तथा आस्तिक दोनों वर्गों से है, जो दर्शन वेदों को नहीं मानते थे, वे दर्शन नास्तिक कहलाएं इनमें तीन दर्शन चार्वाक, जैन तथा बौद्ध आते हैं तथा जो दर्शन वेदों में विश्वास करते थे उनके अन्तर्गत षड्दर्शन आते हैं इनमें न्याय-वैशेषिक, सांख्य-योग तथा मीमांसा-वेदान्त छ: दर्शन आस्तिक दर्शन हैं।

1.2.1 नास्तिक दर्शनों में अहिंसा की अवधारणा :

अहिंसा को बढ़ावा देने में जितना महत्त्वपूर्ण स्थान नास्तिक दर्शनों का रहा है शायद ही उतना योगदान आस्तिक दर्शनों का रहा हो । चार्वाक दर्शन की अगर बात करें तो वैदिक अनुष्ठानों तथा यज्ञों के अन्तर्गत दी जाने वाली बलि का विरोध सर्वप्रथम चार्वाक ने ही किया था । चावार्क ने विरोध में स्पष्टत: कहा था कि न ही यज्ञ में मरा हुआ पशु स्वर्ग में जाता है तथा न ही कभी स्वर्ग तथा हवन आदि सम्पन्न करने वाला व्यक्ति स्वर्ग को प्राप्त करता है । यदि यज्ञ में मरा हुआ पशु स्वर्ग में जाता है तो यज्ञमान अपने पिता को यज्ञ में यज्ञबलि देकर उसको स्वर्ग में क्यों नहीं भेज देता । उन्होंने वेदों की भी

आलोचना इसी सन्दर्भ को लेकर विशेष रूप से की तथा कहा कि वेदों में पशु बलि लिखी है वे ब्राह्मणों की धूर्तकृति है । चार्वाक ने वेदों को राक्षसों की रचना भी इसी कारण कहा है ।

जैन दर्शन के प्रवर्तक महावीर ने अहिंसा का संदेश दिया तथा उनके उपदेश से प्रेरित होकर बड़े-बड़े राजाओं ने अहिंसा रूपी मार्ग से प्रेरित होकर जैन धर्म को धारण किया । महावीर स्वामी जिन्होंने अहिंसा को अत्याधिक महत्त्व दिया, आतरिंक अहिंसा में उन्होंने कष्ट सहन करने तथा क्षमा पर अत्याधिक बल दिया । बाह्य अहिंसा में उन्होंने काफी छोटे से छोटे जीव को भी हिंसा से बचाने की सलाह दी । सर्वप्रथम उन्होंने ही कहा कि मन, वचन तथा कर्म तीनों रूपों से दूसरे को कष्ट पहुंचाना हिंसा है । वर्तमान समय में भी हम जैन साधुओं को देखते हैं जो नंगे पैर और मुंह-नाक पर कपड़ा रखकर तथा हाथ में चंवर लेकर चलते हैं । उनका लक्ष्य यही है कि नाक तथा मुंह को भी ढक कर रखा जाए ताकि वायुमंडल में उड़ते हुए छोटे-छोटे कीड़े सांस के द्वारा भीतर तक न आ पाएं अर्थात् उनकी हत्या रूपी हिंसा न हो पाएं । जैन अनुयायी के हाथ में चँवर इसलिए रहता है कि पैर रखने से पहले ही उस स्थान को चँवर के माध्यम से साफ कर लिया जाए तथा उस स्थान पर विद्यमान सूक्ष्म से सूक्ष्म जीव को वहाँ से परे कर दिया जाए ताकि उनके पैर के नीचे दबकर उनकी हत्या न हो जाए । परन्तु अगर सूक्ष्म अवलोकन किया जाए तो जैन अहिंसा का विचार गृहस्थ अनुयायी के लिए लगभग असंभव जैसा ही है ।

महात्मा बुद्ध ने अन्य बातों में जैसे माध्यम मार्ग अपनाया वैसे ही अहिंसा के लिए भी मध्यम मार्ग पर ही जोर दिया । अहिंसा के लिए बुद्ध ने "इच्छा" या इरादे को कड़ा कारण माना[2] उनका कहना था कि

माँस खाना बुरा नहीं है, जीव हत्या करना बुरा है । बुद्ध ने अपने अनुयायी श्रवणों को यह नहीं कहा कि मांस खाना मना है। उन्होंने कहा कि "जीव हिंसा न करो, न जीव हिंसा का कारण बनो।"[3]

जीव हिंसा का कारण बनने की भी परिस्थिति है । बुद्ध हिंसा एवं युद्ध की नीतिशास्त्र के भी घोर विरोधी थे । बुद्ध कहते हैं कि विजय से वैर उत्पन्न होता है, पराजित दु:खी होता है, जो जय-पराजय को छोड़ चुका है उसे ही सुख है, उसे ही शान्ति प्राप्त होती है । क्योंकि बुद्ध ने वेदोवत हिंसा का विरोध किया था, इस कारण भी बुद्ध दर्शन को नास्तिक कहा गया, ऐसा सोचना निराधार नहीं है ।

1.2.2 आस्तिक दर्शनों में अहिंसा की अवधारणा :

सर्वप्रथम यदि न्याय-वैशेषिक दर्शन की बात करें तो इनके अनुसार विश्व और विश्व के प्राणी ईश्वर में व्याप्त हैं । किसी एक जीव को दूसरे जीव को कष्ट पहुंचाने का कोई अधिकार नहीं है । महर्षि गौतम के अन्त:करण में अहिंसा की भावना अथाह रूप में विद्यमान थी । महर्षि गौतम 'अक्षपाद' के नाम से प्रसिद्ध थे क्योंकि वे अपने पैरों के नीचे आने वाले छोटे-छोटे कीट पतंगों को भी नहीं मरने देना चाहते थे। यह जनश्रुति है कि उन्होंने अपने पैरों में भी आँख लगा रखी थी ताकि कोई जीव पैरों के नीचे न रौंदा जाए । इस किवंदति से यह स्पष्ट होता है कि महर्षि गौतम कितने अहिंसा प्रिय थे । न्याय-वैशेषिक के मतानुसार ज्ञान, इच्छा, प्रयत्न, सुख-दु:खादि आत्मा के आगन्तुक गुण है । आत्मा का मन, इन्द्रिय, विषय आदि से सन्निकर्ष होने पर ये गुण आत्मा में उत्पन्न होते हैं, इससे यह पता चलता है कि दूसरे को दु:ख पहुंचाने की इच्छा के कारण सामग्री में व्यक्ति का ज्ञान ही नहीं अपितु लोगों

की अपेक्षाएं, समाज की स्थिति तथा न्याय-व्यवस्था आदि भी शामिल होते हैं । न्याय वैशेषिक के अनुसार वस्तुओं के सेवन से राग उत्पन्न होता है । राग से मोह तथा मोह से क्रोध उत्पन्न होता है । इस राग-द्वेष, मोह तथा क्रोध से प्रेरित होकर प्राणी शरीर से हिंसा, चोरी आदि आचरण को करता है अर्थात् हिंसा की प्रवृत्ति का जन्म होता है।

योग-सांख्य में हमें अहिंसा का विचार भी प्रचुर मात्रा में मिलता है । भारतीय दर्शनों में सर्वाधिक अहिंसा समर्थक दर्शन योग-सांख्य ही है । योगाभ्यास के लिए अहिंसा एक महत्त्वपूर्ण घटक है। अष्टाँग योग में 'यम' प्रथम अंग है । अहिंसा यम में प्रथम अंग है । योग में हिंसा को एक वितर्क कहा है अर्थात् यमों (अहिंसा, असत्य, सत्ये, स्त्रीगमन तथा परिग्रह) के विपरित आचरण को वितर्क कहते हैं । उपरोक्त पाँच यमों में अहिंसा सबसे उत्कृष्ट यम है, अत: हिंसा सबसे प्रबल और दुष्ट वितर्क है । यदि यह वितर्क साधक के मन में एक बार जाग जाता है तो यह समस्त योगाभ्यास और बहुत समय से एकत्र किया हुआ तप क्षण भर में नष्ट हो जाता है । सांख्य सूत्र के प्रणेता महर्षि कपिल कहते हैं कि दृष्ट और अदृष्ट दोनों प्रकार के साधन दु:ख निवृत्ति के लिए उपयोगी नहीं । दोनों में समान दोष है । भोजन, वस्त्र, औषधचिकित्सा आदि दृष्ट साधनों में जिस प्रकार अशुद्धि, हिंसा, क्षय एवं अतिशय दोष है वैसे ही दोष यज्ञ आदि अदृष्ट साधनों में भी है । जिस प्रकार दृष्ट साधनों में हिंसा पाप का कारण होती है, वैसे ही यज्ञादि वैदिक अनुष्ठानों में की गई हिंसा भी पाप के लिए होती है ।

मीमांसा तथा वेदान्त में भी अहिंसा तथ्य को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है । हालांकि हम देखते हैं कि यज्ञों में दी जाने वाली पशु बली रूपी हिंसा का सबसे अधिक समर्थन मीमांसा दर्शन में ही हुआ है

। परन्तु स्थूल दृष्टि से देखने पर ऐसा लगता है कि मीमांसा दर्शन में हिंसा का समर्थन हुआ है परन्तु सूक्ष्म अर्थ समझने पर स्पष्ट होता है कि वेदों में जिस पशु बलि का वर्णन मिलता है, वहाँ पशु का अर्थ गौ, अश्व, अग्नि या अज आदि लौकिक पशु नहीं है, अपितु पशु केवल एक प्रतीक शब्द है, यहां पर अग्नि, वायु, सूर्य तक को पशु की संज्ञा दी गई है और उन्हीं का यज्ञ अनुष्ठान वेद में बताया गया है । यदि ऐसा अर्थ लिया जाए तो सूर्य या अग्नी जैसे पशु का मरण कैसे संभव है? अत: मीमांसा दर्शन में कहीं पर भी हिंसा का समर्थन नहीं मिलता। अद्वैत वेदान्त में भी अहिंसा को अन्य दर्शनों की भांति समान महत्त्व दिया गया है। शकंराचार्य ने ब्रह्म साक्षात्कार के लिए तीन साधनों श्रवण, मनन तथा निधिध्यासन को महत्त्वपूर्ण माना है । निधिध्यासन, योगाभ्यास का ही एक दूसरा रूप है । श्रवण तथा मनन की दृढ़ता के लिए योगाभ्यास जो योगदर्शन द्वारा प्रतिपादित है अति आवश्यक है तथा योगाभ्यास के लिए प्रथम पहलू या घटक जो आवश्यक है वह है – अहिंसा, अत: वेदान्त के अन्तर्गत शंकराचार्य अहिंसा को ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति हेतु आवश्यक मानते हैं ।

अत: हम उपर्युक्त अध्ययन के पश्चात् स्पष्ट रूप में कह सकते हैं कि भारतीय दर्शन चाहे आस्तिक हो या नास्तिक सभी ने हिंसा का त्याग तथा समाज की प्रगति व कल्याण के लिए किसी न किसी रूप में अहिंसा को आवश्यक माना है ।

1.2.3 समकालीन भारतीय दर्शन में अहिंसा की अवधारणा :

प्राचीन समय के बाद भारत के इतिहास में हिंसावाद ने फिर जोर पकड़ा और लोग अहिंसक मार्ग को भूल गए और इस समय में

आधुनिक काल के सबसे बड़े अहिंसावादी महात्मा गांधी ने लोगों का पथ-प्रदर्शन किया । गांधी जी की विशेषता यह थी कि उन्होंन अहिंसा को सदाचार न मानकर सम्पूर्ण जीवन का एक आदर्श माना । अभी तक अहिंसा को धर्म का एक अंग माना जाता था, इसका प्रयोग गांधी जी ने राजनीति में करके तथा अपने इस हथियार से अंग्रेजों को झुकाकार एक नई दिशा प्रदान की । यहाँ यह समझ लेना जरूरी है कि अहिंसा कायरता नहीं है । अहिंसा किसी पर आक्रमण नहीं करती किन्तु वह किसी पर आक्रमण होने भी नहीं देती। स्वयं गांधी जी कहते हैं कि "मेरी अहिंसा कायरों के लिए नहीं, शूरवीरों के लिए है, उन्होंने यह भी कहा था कि सम्पूर्ण जाति की कायरता से हिंसा लाख गुना अच्छी है।"[4] गांधी जी कहते हैं कि अहिंसा के मार्ग पर चलना तलवार की धार पर चलने के समान है । अहिंसा तथा सत्य एक-दूसरे से इस प्रकार मिले हैं जैसे सिक्के दो पहलु उसी तरह अहिंसा के बगैर सत्य की खोज संभव नहीं है । ईश्वर का साक्षात्कार भी वहीं कर सकता है जो पूर्ण रूप से अहिंसक है । अहिंसा केवल दूसरों को न मारना या न सताना ही नहीं है, कुविचार मात्र हिंसा है । गांधी जी कहते हैं कि अहिंसा कोई स्थूल पदार्थ नहीं है जिसे देखा जा सके । किसी को मारना तो हिंसा है ही, कुविचार हिंसा है, उतावलापन हिंसा है, मिथ्याभाषण हिंसा है, द्वेष हिंसा है, किसी को बुरा चाहना हिंसा है। सारे मनुष्यों के लिए जो आवश्यक वस्तु है, उस पर कब्जा रखना भी हिंसा का ही एक रूप है, गांधी जी ने अनेक परिस्थितियों को देखते हुए हिंसा के दो क्षेत्र निर्धारित किए हैं (i) आन्तरिक तथा (ii) बाह्य । आन्तरिक क्षेत्र में मानसिक विकार आते हैं- क्रोध, द्वेष, राग, लोभ, आलस्य, छल बेईमानी आदि । ये सभी आंतरिक हिंसा के रूप हैं और इनसे बचना अहिंसा है । आंतरिक क्षेत्र

में क्षमा, प्रेम तथा मैत्री का निरंतर पालन करते हुए अधिकाधिक अहिंसक बन जाएगा । गांधी बाह्य हिंसा के बारे में कहते हैं कि उससे वह कभी भी नहीं बच सकता । उसके जीने में, चलने-फिरने में, खाने-पीने में कुछ न कुछ हिंसा होती रहती है, चाहे वह हिंसा कितनी ही सूक्ष्म क्यों न हो, परन्तु गांधी जी इस बारे में बौद्ध धर्म का अनुसरण करते हुए मानते है कि मनुष्य को जहां तक सम्भव हो जान बुझकर हिंसा से बचना चाहिए ।

गांधी जी के तत्त्वदर्शन में अहिंसा के दो रूप हैं- निषेधात्मक अहिंसा और रचनात्मक अथवा विधायक अहिंसा । निषेधात्मक अहिंसा का अर्थ है किसी जीवधारी को किसी प्रकार का कष्ट न पहुंचाना । लेकिन गांधी जी अहिंसा को केवल निषेधात्मक शक्ति नही मानते थे बल्कि उनके चिंतन में अहिंसा एक रचनात्मक विध्यात्मक और गतिशील शक्ति है । अहिंसा का अर्थ है प्रेम; मनुष्य से ही नहीं बल्कि पशु-पक्षियों कीड़े-मकोड़ों और पेड़-पौधों तक से प्रेम । गांधी जी का मत है कि मनुष्य निरपेक्ष या पूर्ण अहिंसा पर आचरण नहीं कर सकता । इसलिए गांधी जी की राय थी कि जितना हो सके, अहिंसा पर आचरण करना चाहिए । कुछ विशेष परिस्थितियों में किसी व्यक्ति या जीव की जान लेना भी हिंसा है । गांधी जी ने एक बार अपने आश्रम में एक बछड़े को जहर दिलवा दिया था क्योंकि उसकी पीड़ा असहनीय थी जिसको कम करने का कोई उपाय शेष नहीं बचा था । गांधी जी अनुसार निम्न चार शर्ते पूरी होने पर रोगी व्यक्ति के प्राण लिए जा सकते हैं :-

(क) रोग उपचार से परे हो

(ख) संबंधित व्यक्तियों ने रोगी के जीवन की आशा बिल्कुल त्याग दी हो।

(ग) रोग ऐसा हो जिसमें कोई सेवा या सहायता लाभदायी न हो ।

(घ) रोगी अपनी इच्छा प्रकट करने की स्थिति में न हो ।

व्यवहारिक धरातल पर गांधी जी ने अहिंसा को तीन भागों में बांट दिया था । प्रथम 'वीर की अहिंसा' - यह अहिंसा जान-बूझ कर साधन युक्त व्यक्ति द्वारा स्वीकार की गई अहिंसा है । यह वीरों की अहिंसा है । इस प्रकार की अहिंसा व्यक्ति किसी आवश्यकता या नीति के कारण स्वीकार नहीं करता बल्कि अपने आंतरिक विश्वास के कारण स्वीकार करता है । यह अहिंसा जीवन के सभी क्षेत्रों पर लागू हो सकती है । इसकी न कोई सीमा है न कोई अपवाद । यह अहिंसा सभी के बस की नहीं है बल्कि इसका पालन कुछ व्यक्ति ही कर सकते हैं । गांधी जी ने अहिंसा को परमपुरुषार्थ तथा वीरों का धर्म कहा है । सच्ची अहिंसा आने के बाद वाणी से, आचार से, व्यवहार से अमृत झरने लगता है । सम्पूर्ण आत्म शुद्धि के प्रयत्न मं मर-मिटना यह इस अहिंसा की शक्ति है । गांधी जी आत्मबल के सामने तलवार के बल को तृणवत मानते थे । तलवार का उपयोग कर के आत्मा शरीरवत बनती है जबकि अहिंसा का उपयोग करके आत्मा आत्मवत् बनती है।

गांधी जी के चिंतन में दूसरी अहिंसा व्यवहारिक या काम चलाऊ अहिंसा है । यह अहिंसा कमजोर लोगों की अहिंसा होती है। इसे जीवन के किसी विशेष क्षेत्र में नीति की भांति अपनाया जाता है । गांधी जी इस प्रकार की अहिंसा को निष्क्रिय प्रतिरोध का नाम देते हैं । यदि इस अहिंसा को ईमानदारी से किया जाए तो यह भी कुछ हद तक कारागार सिद्ध होसकती हे ।

गांधी जी ने तीसरे प्रकार की अहिंसा 'कायरों की अहिंसा' को बताया है । कायरों व बुजदिलों की अहिंसा, अहिंसा नहीं है । इसे हम भ्रम से ही अहिंसा कहते हैं । उनका कहना था कि अगर कभी कायरता तथा हिंसा के बीच एक का चुनाव करना हो तो हिंसा का चुनाव उचित रहेगा । गांधी जी कायरता को किसी भी हालत में सहने के लिए तैयार नहीं थे उन्होंने कहा कि मैं कायरता की अपेक्षा बहादुरी से प्राण त्यागना अच्छा समझता हूँ । अहिंसा कायरों का शस्त्र नहीं हो सकती । अगर कोई बुजदिल होकर अहिंसा की शरण लेता है तो अहिंसा उसकी रक्षा नहीं अपितु नाश कर देगी ।

गांधी जी के अहिंसा के विचार को अपनाने वाले प्रतिनिधि **विनोभा भावे** का वर्णन उनके साथ न करें तो अन्याय होगा, विनोभा जी गांधी जी तथा गांधीवाद के सच्चे प्रतिनिधि माने जाते हैं। उन्हें गांधी जी का नैतिक एवं आध्यात्मिक उत्तराधिकारी माना जाता है । विनोभा जी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने गांधी जी के अहिंसा के सिद्धान्त को सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक दोनों पहलुओं पर समान रूप से विचार किया है । सैद्धान्तिक क्षेत्र में वे गांधी जी के अहिंसा विचार की व्याख्या एवं स्पष्टीकरण शास्त्रीय ढंग से करते हैं तथा कहीं-कहीं पर गांधी जी के अहिंसा के आधार पर नई-नई अवधारणाओं का भी निर्माण करते हैं । व्यवहारिक रूप में इन्होंने गांधी जी की अहिंसा का प्रयोग देश के नये आर्थिक, राजनीतिक एवं सामाजिक क्षेत्रों में किया, जिसके परिणामस्वरूप भूदान, ग्रामदान, प्रखंडदान, जिलादान एवं राज्यदान की अवधारणाएं सामने आई । इसके साथ-साथ विनोभाजी ने सर्वोदय आंदोलन में सम्पतिदान, श्रमदान, बुद्धिदान, शान्तिसेना, आचार्यकुल आदि अन्य कितने ही आवास खड़े किये ।[5]

इनके साथ ही आधुनिक विचारकों में **स्वामी विवेकानन्द** जिन्होंने हिन्दू धर्म को विश्व स्तर पर पहचान दिलाई उनका वर्णन भी अनिवार्य जान पड़ता है । स्वामी विवेकानन्द अहिंसा पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं कि अहिंसा के बारे में सोचना, लिखना, उसका अनुभव करना तथा उसका पालन करना इतना आसान कार्य नहीं है । इसके लिए एक अद्भूत सोच विचार तथा अद्म्य साहस की आवश्यकता है, स्वामी जी कहते हैं हम कैसे जाने कि हम अहिंसा के पथ पर हैं, इसके लिए हमें, यह अनुभव करना होगा कि हम ईर्ष्या से परे हैं, ईर्ष्या से मुक्त हैं । स्वामी विवेकानन्द कहते हैं कि अहिंसा का अर्थ ईर्ष्या (Jealousy) से मुक्ति है ।[6] एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति हेतु बहुत अच्छे काम करता है परन्तु अहिंसक वही व्यक्ति है जिसके मन में किसी के प्रति ईर्ष्या भावना नहीं है, स्वामी जी कहते हैं जिसके हृदय में ईर्ष्या विद्यमान है उसके अंदर में अहिंसा का आस्तित्व विद्यमान नहीं हो सकता। गाय तथा बकरी भी मांस नहीं खाती तो क्या वे महान अहिंसक कहलाती हैं । कोई व्यक्ति जो मांस खाता है परन्तु ईर्ष्या से परे है, वह उनसे कहीं अच्छा है जो विधवा महिलाओं तथा अनाथ बच्चों से धोखा करता है, उन्हें कष्ट पहुँचाता है, फिर ऐसा व्यक्ति घास पर ही क्यों न जीवित रहता हो । ऐसा व्यक्ति जो किसी भी व्यक्ति को दु:ख पहुँचाने के बारे में सोच भी नहीं सकता, अपने शत्रु की सम्पन्नता देख कर भी आनंद महसुस करता है, वही सच्चे अर्थों में योगी है, अहिंसक है । स्वामी जी कहते है ईर्ष्या दासता की मुख्य विशेषता है । वे कहते हैं ईर्ष्या ही सभी बुराईयों की जड़ है । यही ईर्ष्या हिंसा का कारण बनती है। यहां पर स्वामी जी के विचार जे॰

कृष्णमूर्ति तथा महात्मा बुद्ध के समान ही हैं क्योंकि उन्होंने भी ईर्ष्या को हिंसा की उत्पत्ति के कारणों में से एक माना है ।

1.3 महात्मा बुद्ध के अनुसार अहिंसा की अवधारणा :

महात्मा बुद्ध का धम्म मानवतावादी धम्म है । महात्माबुद्ध इसी लोक की बात करते हैं क्योंकि परलोक का वास्तव में कोई आस्तित्व नहीं है, परलोक केवल कल्पना मात्र है । इसलिए इस लोक मं जो भी मनुष्य प्रणी है, जो भी जीव जगत है, उसके कल्याण की सुख की, उसके जीने के अधिकार के स्वतन्त्रता की बात बुद्ध ने कही है । इसलिए महात्मा बुद्ध दुनिया के इतिहास में सबसे बड़े मानवतावादी तथा अहिंसावादी दार्शनिकों में से एक हुए हैं। महात्मा बुद्ध ने किसी भी प्रकार की कोई भी हिंसा का समर्थन नहीं किया है । फिर वह चाहे जीव हिंसा हो, प्राणी हत्या हो या समाज में जन्म-जाति, धर्म-पंथ के नाम पर या संकुचित राष्ट्रवाद के नाम पर होने वाली हिंसा हो । महात्मा बुद्ध ने सभी प्रकार की हिंसा का निषेध किया है । सभी जीवों के प्रति प्रेम, मैत्री, करूणा की भावना ही बौद्ध धर्म की विशेषता रही है । सिद्धार्थ गौतम ने बुद्धत्व प्राप्ति के बाद अपना सम्पूर्ण जीवन मानवता के लिए, मानवीय मूल्यों की रक्षा के लिए, जीव प्राणियों पर अनुकम्पा करने के लिए, समाज में मानवता की स्थापना के लिए समर्पित कर दिया था, वे किसी भी प्रकार के शोषण तथा उत्पीड़न के विरोधी थे । उसी प्रकार वे अकारण पशु हत्या के भी विरोधी थे । उनके दर्शन की महत्त्वपूर्ण उद्घोषणा है - "भवतुं सब्ब मगलं" अर्थात् सभी का कल्याण हो,[7] इसमें सभी जीव-प्राणियों और मनुष्य मात्र के कल्याण

की भावना की गई है, सभी के कल्याण का अर्थ है किसी का भी अहित, किसी का भी बुरा न हो, इस भावना को व्यक्त किया है ।

महात्मा बुद्ध ने अहिंसा पर अपने विचार प्राचीन परम्परा से अलग हटकर रखे क्योंकि अब तक अहिंसा का अर्थ था – किसी प्राणी की हत्या न करना परंतु महात्मा बुद्ध ने इस अर्थ को विस्तार देते हुए, किसी भी प्राणी को मन, वचन तथा कर्म से कष्ट न पहुँचाना, के रूप में अहिंसा की अवधारणा को नवीन रूप में प्रस्तुत किया है । उनके उपदेशों में अहिंसा की सटीक शब्दावली कहीं पर भी विद्यमान नहीं है परन्तु यह भी सत्य हे कि उनके प्रत्येक उपदेश में, विचार में, सिद्धान्त में मैत्री तथा करुणा स्थान रखती है जो अहिंसा के ही रूप है । महात्मा बुद्ध ने मांस भक्षण संघ में स्वीकार्य करके अहिंसा के सिद्धान्त को मनोवैज्ञानिक स्वीकृति प्रदान की है । उनके उपदेशों, विचारों व सिद्धान्तों का प्राणी हिंसा का निषेध, यज्ञ में हिंसा का विरोध, युद्ध संबंधी हिंसा पर विचार, अधर्माचरण एवं धर्माचरण तथा आत्महत्या संबंधी हिंसा का विचार आदि, का गहन अध्ययन करने से हमें उनके अहिंसा सम्बन्धी विचारों का स्वयं ही साक्षात्कार हो जाता है । महात्मा बुद्ध ने हिंसा की उत्पत्ति के कारणों के बारे में बताते हुए अविधा, तृष्णा, क्रोध, लोभ, ईर्ष्या तथा विरोध के बारे में बताया है कि किस प्रकार इन अवगुणों में फंस कर व्यक्ति अपने वास्तविक स्वरूप को नहीं पहचान पाता तथा विवेकशून्य होकर हिंसा रूपी कुमार्ग पर बढ़ता चला जाता है। महात्मा बुद्ध हिंसा की उत्पत्ति के कारणों की व्याख्या के बाद इनसे निजात पाने के मार्ग का भी उल्लेख उनके दर्शन में मिलता है । हिंसा से मुक्ति प्राप्ति हेतु वे 'पंचशील मार्ग', 'शील का मार्ग' 'मध्यम प्रतिपदा' तथा 'मैत्रीपूर्ण प्रेम' का मार्ग बताते है जिस पर चलकर कोई

भी मानव अपने व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन को खुशहाल बना सकता है। महात्मा बुद्ध अपना संदेश जन-जन तक पहुँचाना चाहते थे इसलिए उन्होंने अपने अहिंसा के संदेश को सैद्धान्तिक चक्रव्यूह से मुक्त करके व्यवहारिक धरातल प्रदान किया ताकि प्रत्येक व्यक्ति उपर्युक्त अहिंसा के सिद्धान्तों, जिनकी हमने द्वितीय अध्याय में विस्तारपूर्वक चर्चा की गई है, को अपनी दैनिक जीवनशैली में आत्मसात कर सके तथा समाज को हिंसामुक्त बना सके ।

1.4 जे॰ कृष्णमूर्ति के अनुसार अहिंसा की अवधारणा :

आधुनिक चिंतकों में अहिंसा की विचारधारा को आगे बढ़ाने में जे॰ कृष्णमूर्ति का योगदान भी अतुलनीय है । जे॰ कृष्णमूर्ति अनुसार "हर प्रकार का नियन्त्रण तथा दमन विकृत्ति है और विकृत्ति हिंसा है।" [8] कृष्णमूर्ति के अनुसार अहिंसा को समझने के लिए हिंसा का अर्थ समझना जरूरी है । हिंसा का अर्थ है - किसी को कष्ट पहुँचाना । हिंसा न केवल मनुष्यों में अपितु पशुओं में भी पाई जाती है । मानव में ईर्ष्या, निंदा, क्रोध, भय आदि विकार विद्यमान हैं जिनके कारण हिंसा की उत्पत्ति होती है । अत: कृष्णमूर्ति ने इसे सिद्धान्त की तरह न समझा कर व्यवहारिक रूप से समझने तथा समझाने का प्रयास किया है । अति सूक्ष्म रूप में अगर हम उनके विचारों पर प्रकाश डाले तो वे हिंसा को मनुष्य की एक प्रवृत्ति मानते हैं । उनके अनुसार मनुष्य की प्रवृत्ति आज भी हजारों वर्ष पूर्व के आदिमानव की तरह ही लड़ाकू व ईर्ष्यालु ही है। वे कहते हैं कि आधुनिक मानव ने वैज्ञानिक स्तर पर अत्याधिक उन्नति प्राप्त की है परन्तु मानसिक स्तर पर उसे शान्ति की प्राप्ति नहीं हो सकी। कृष्णमूर्ति के अनुसार हिंसा के छोटे-बड़े रूप हो सकते हैं

जिनमें देश, धर्म के नाम पर की जाने वाली हत्या हिंसा का बड़ा रूप है वहीं किसी व्यक्ति के बोलने का गलत ढंग तथा उसको देखकर उसकी उपेक्षा करना आदि हिंसा के सूक्ष्म श्रेणी के अन्तर्गत ही आते हैं।

उसके बाद जे० कृष्णमूर्ति हिंसा के कारणों का भी वर्णन करते हैं जिसमें प्रथमत: वे हिंसा को मनुष्य की मूल प्रवृत्ति मानते हैं जो उसे विरासत में मिली है, जिसकी उत्पत्ति पशु जाति से हुई है ।[9] इसका तात्पर्य है कि वे मनुष्य को जन्मजात हिंसक मानते हैं । अन्य कारण वे समाज को बताते है। । उनके अनुसार जिस समाज में मनुष्य रहता है, वहाँ की ईर्ष्या भावना, आपसी द्वेष मनुष्य को हिंसक बनने के लिए विवश कर देते हैं । इसलिए बच्चे को बचपन से ही सिखाया जाता है कि समाज में अस्तित्व के लिए संघर्ष अति आवश्यक है, जिससे मनुष्य हिंसक बनने के लिए विवश हो जाता है। अन्य कारण में मनोवैज्ञानिक कारण भी मुख्य है । इसके अन्तर्गत वे सम्बन्धों तथा अधिकारों को मिलाते हैं । वे कहते हैं कि जब भी व्यक्ति के सम्बन्धों तथा अधिकारों पर कोई खतरा आता है तो व्यक्ति तुरंत हिंसक रूप कारण कर लेता इसके अतिरिक्त जे० कृष्णमूर्ति व्यक्तिगत कारणों को भी हिंसा की उत्पत्ति करने वाले मुख्य कारक बताते हैं जिन्हें व्यक्ति अपनी प्रतिदिन की दिनचर्या में जीता है । व्यक्तिगत कारणों के अन्तर्गत वे अहं, लोभ, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष इत्यादि का वर्णन करते हैं जिनका विस्तृत विवेचन तृतीय अध्याय में किया गया है ।

जे० कृष्णमूर्ति हिंसा के स्वरूप, उत्पत्ति के कारण बताने तक ही सीमित नहीं रहते बल्कि वे इस अभिशाप से मुक्ति का मार्ग भी सुझाते हैं । वे चाहते थे प्रत्येक व्यक्ति इसे स्वतन्त्र रूप से अपनाएं न कि किसी पक्षपात या दबाव में आकर इसका अनुसरण करे । अत: उबन्त में

कृष्णमूर्ति कहते हैं कि अहिंसा के लिए व्यक्ति न केवल वर्तमान में अपने मन में मौजूद सक्रिय हिंसा से मुक्त हो बल्कि अचेतन की गहराई में मौजूद क्रोध, कुण्ठा, कृपा आदि में भी मुक्त हो । इसके लिए वे 'आत्म अन्वेषण' का मार्ग बताते है। जिसके अन्तर्गत व्यक्ति पूर्ण स्वतन्त्र रूप से, परम्परा या पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर, सजगता के साथ अपनी आंतरिक दशा का अवलोकन करता है । वे कहते हैं कि यदि व्यक्ति आंतरिक हिंसक प्रवृत्ति को समझ लेता है तथा उस पर नियन्त्रण कर लेता है तो उसे बाहर की हिंसा को समझने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती तथा मानव हिंसा से सदैव के लिए मुक्त हो जाता है । उपर्युक्त हिंसा के स्वरूप, उत्पत्ति के कारण तथा हिंसा मुक्ति का साधन आत्म अन्वेषण का हम तृतीय अध्याय में विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे ।

अति संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि प्राचीन भारतीय संस्कृति से लेकर आधुनिक विचारकों के दृष्टिकोण में अहिंसा ऐसा विचार है जिसके अनुसार कोई व्यक्ति दूसरे व्यक्तियों को यहां तक कि अन्य जीव-जन्तुओं को भी कष्ट पहुंचाने का विचार अपने मन में नहीं लाता है । आधुनिक समय में हिंसा के नए-नए तरिके भी सामने आए हैं और उनके विरोधस्वरूप व्यक्ति को अहिंसक बनाने के प्रयास हुए हैं । एक देश द्वारा दूसरे देश पर अधिकार जमाना, साम्प्रदायिक और आंतकवादी हिंसा का प्रसार और उन्हें रोकने के लिए राज्य द्वारा की गई हिंसा आधुनिक परिप्रेक्ष्य में हिंसा के नए चेहरे हैं । इस प्रकार की हिंसा जो समूह करता है वह उसे सामाजिक, राजनैतिक आर्थिक आधारों पर वैध सिद्ध करने की चेष्टा भी करता है । हिंसा का यह नया रूप अपने सुख के लिए अथवा दूसरे से अपने रक्षा करने के लिए की गई हिंसा से भिन्न कोटि की हिंसा को दर्शाता है । जिस तरह हिंसा ने एक

व्यवस्थाबद्ध तथा संस्थागत रूप ले लिया है, उसी तरह अहिंसा ने भी व्यवस्थागत और संस्थागत रूप ले लिया है । राज्य की धर्म निरपेक्षता, लोकतन्त्र न्याय की विधि व्यवस्था की स्वतन्त्रता, जाति, धर्म, क्षेत्र आदि संकीर्णताओं से ऊपर-उठाने की आधुनिकवादी सोच, जैविक पर्यावरण का संरक्षण ये सभी अवधारणाएं संस्थाबद्ध अहिंसा के नए रूप हैं । अगर आप जातिवाद सोच से ऊपर उठे हुए व्यक्ति हो तो आप एक प्रकार अहिंसक व्यक्ति हैं तथा यदि आप जातिवादी विचारधारा के व्यक्ति हैं तो आप हिसंक हैं । अगर आप अपने धर्म के प्रति भी कट्टरवादी सोच रखते हैं तो आप हिंसावादी ही समझे जाएंगे परन्तु यदि आप सर्वधर्म भाव वाले व्यक्ति हैं तो आप अहिंसक विचारधारा के व्यक्ति माने जाऐंगे, भले ही आप मासांहारी क्यों न हो । कहने का तात्पर्य यह है कि हिंसा तथा अहिंसा दोनों के ही परिदृश्य बदल गए हैं । इस प्रकार प्राचीन तथा आधुनिक अहिंसा के विचारों का मिश्रण करके एक नया विवेचन आवश्यक प्रतीत होता है । इसी आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए हमनें प्राचीन विचारकों में से महात्मा बुद्ध तथा आधुनिक या समकालीन विचारकों में से जे॰ कृष्णमूर्ति के अध्ययन की योजना बनाई, जिनके अहिंसाविषयक दृष्टिकोणों को दो भिन्न-भिन्न वैचारिक सन्दर्भों में अहिंसा के प्रसंग के सन्दर्भ में आधुनिक भौतिकवादी युग में भी प्रासंगिक प्रतीत होते है। । इन दोनों विचारकों के विचारों को आधार बनाते हुए हमने महात्मा बुद्ध तथा जे॰ कृष्णमूर्ति के अहिंसाविषयक विचारों का विस्तारपूर्वक अध्ययन करने का प्रयास किया है ।

अतएव बुद्ध तथा कृष्णमूर्ति के अहिंसा विषयक मतों का हमने क्रमशः द्वितीय तथा तृत्तीय अध्यायों में पृथक्-पृथक् विस्तारपूर्वक अध्ययन करने के पश्चात् चतुर्थ अध्याय में इनके मतों की पारस्परिक तुलना

करके यह देखने का प्रयास किया है कि इनमें से प्रत्येक विचारक के अहिंसा विषयक मत का क्या वैशिष्ट्य है? क्या इनके विचार वस्तुत: एकांगी है अथवा इन दोनों के विचारों का समन्वय रूप में अहिंसा का कोई नया रूप प्रकाश में आता है, जिससे आधुनिक समय में जो नए-नए हिंसा के रूप सामने उभर कर आ रहे हैं, उनसे भलि-भांति निपटा जा सके । इसके बाद पंचम अध्याय में हमने इसके प्रसांगिकता एवं निष्कर्ष के रूप में बनाते हुए इन दोनों विचारकों के विचारों का सार निकालने की कोशिश की है तथा अन्त में आधुनिक विश्व में जिस तरह आतंकवाद, भ्रष्टाचार चोरी, हत्या, बलात्कार जैसे हिंसक कृत्य बढ़ रहे हैं, उनको ध्यान में रखते हुए अहिंसा की प्रासंगिकता या महत्त्व पर प्रकाश डाला गया है कि किस प्रकार महात्मा बुद्ध तथा जे॰ कृष्णमूर्ति द्वारा प्रचारित-प्रसारित अहिंसा के विचार को जीवन में अपनाकर इन सब बुरे कृत्यों से इस संसार को पूर्ण रूप से मुक्त किया जा सकता है ।

संदर्भ सूची :

1. सुरजीत कौर जौली, ***गांधी एक अध्ययन,*** कन्सैप्ट पब्लिशिंग कम्पनी 2007, नई दिल्ली, पृ० 344
2. मनोज कुमार, रति रंजन, ***सत्याग्रह एवं अहिंसा संबंधी विचार***, पृ० 160
3. ***वही***, पृ० 161
4. मनोज कुमार, रति रंजन, ***सत्याग्रह एवं अहिंसा संबंधी गांधी के विचार,*** कल्पना प्रकाशन, पृ० 158
5. नारणी, ***नारायण प्रकाश गांधी दर्शन मीमांसा,*** पाइॅटर पब्लिशर्स, जयपुर, पृ० 199
6. आत्मानन्द, ***स्वामी एबसेन्स ऑफ जियलसी–दी टेस्ट आन नान वायलेन्स,*** एडोटॉरियल वेदान्त केसरी, अक्तूबर 2011, पृ० 90
7. डॉ० विमल कीर्ति, ***भगवान बुद्ध का मानवतावादी चिंतन,*** साहित्य संस्थान गाजियाबाद, प्रथम संस्करण, 2011, पृ० 3
8. कृष्णिमूर्ति जे०, ***गरुड़ की उड़ान,*** पृ० 27
9. कृष्णिमूर्ति जे०, ***हिंसा से परे,*** पृ० 07